जाति सम्बन्धी असमानताएँ
(CASTE INEQUALITIES)

भारतीय समाज की संरचनात्मक समस्याओं में जातिगत विभेद एक प्रमुख समस्या है। अनेक परिवर्तनों के बाद भी जाति पर आधारित भारतीय समाज की संरचना में कोई आधारपूर्ण परिवर्तन नहीं हुआ है। यह सच है कि स्वतन्त्रता के बाद जाति व्यवस्था से सम्बन्धित सामाजिक सम्पर्क, खान-पान और व्यवसाय के नियम लगभग पूरी तरह टूट चुके हैं लेकिन पूरा भारतीय समाज आज भी हजारों जातियों में विभाजित है। जाति सम्बन्धी मनोवृत्तियों की जड़ें इतनी गहरी हैं कि आज भी कुछ जातियाँ अपने आपको दूसरी जातियों से अधिक पवित्र और श्रेष्ठ मानकर अपनी दूरी बनाये रखने का प्रयत्न करती हैं। गाँवों में अभी भी निम्न जातियों से भेदभाव का व्यवहार किया जाता है। कानून द्वारा अस्पृश्यता का पूरी तरह उन्मूलन हो जाने के बाद भी अनेक क्षेत्रों में दलितों पर अत्याचार होना एक मामूली बात है। जातिगत असमानता का सबसे स्पष्ट रूप अन्तर्विवाह के प्रचलन के रूप में देखने को मिलता है। परम्परागत रूप से जाति व्यवस्था को बनाये रखने वाला सबसे मुख्य नियम यह था कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी जाति के अन्दर ही विवाह सम्बन्ध स्थापित करेगा। यह नियम आज भी पहले ही की तरह प्रभावपूर्ण बना हुआ है। ऐसे उदाहरणों की भी कमी नहीं है जब किसी उच्च जाति की लड़की द्वारा निम्न जाति के युवक से विवाह करने पर जाति पंचायत द्वारा उसे अमानवीय रूप से प्रताड़ित किया गया।

जातिगत असमानता का एक दूसरा रूप आर्थिक क्षेत्र में देखने को मिलता है। निम्न जातियों की आर्थिक दशा में सुधार करने के लिए स्वतन्त्रता के बाद सरकारी नौकरियों में उन्हें आरक्षण जरूर दिया गया लेकिन इसका लाभ अनुसूचित जातियों की जनसंख्या के एक बहुत छोटे भाग को ही मिल सका। निम्न जातियों के अधिकांश लोग आज भी अपने परम्परागत व्यवसाय को करने के लिए बाध्य हैं। इस दशा में निम्न और पिछड़ी जातियों के लोग शारीरिक श्रम या कम आय वाली आर्थिक क्रियाओं के द्वारा ही अपना भरण-पोषण कर पाते हैं। गाँवों में निम्न जाति के व्यक्ति द्वारा अपना स्वतन्त्र व्यवसाय करने की दशा में साधारणतया उच्च जातियों के लोगों द्वारा उसका बहिष्कार किया जाने लगता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि स्वतन्त्रता के बाद भारत के नगरीय क्षेत्रों में जाति सम्बन्धी असमानताएँ कुछ कम हुई हैं लेकिन भारत की जनसंख्या का 72 प्रतिशत हिस्सा ग्रामीण होने के कारण हम ग्रामीण क्षेत्रों के सन्दर्भ में ही जाति सम्बन्धी असमानताओं का सही मूल्यांकन कर सकते हैं।

डॉ. श्यामाचरण दुबे ने अपनी पुस्तक 'इण्डियन सोसाइटी' में अनेक ऐसी दशाओं का उल्लेख किया है जो यहाँ जाति सम्बन्धी असमानताओं को स्पष्ट करती है। सबसे बड़ा आश्चर्य यह है कि इस्लाम और ईसाई धर्म में किसी तरह की सामाजिक असमानता को स्वीकार न करने के बाद भी भारत के मुसलमान और ईसाई भी एक-दूसरे से ऊँची और नीची अनेक जातियों में विभाजित हो गये। डॉ. दुबे का विचार है कि भारत में एक तरफ़ लोकतन्त्र, सामाजिक समानता और धर्मनिरपेक्षता के विचारों को प्रभावपूर्ण बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है तो दूसरी ओर अपने-अपने स्वार्थों के कारण विभिन्न समूह आज भी जाति विभेदों की बीमारी से चिपके हुए हैं। किसी का उद्देश्य जातियों के विभाजन द्वारा राजनीतिक लाभ प्राप्त करना है तो कुछ लोग धार्मिक कट्टरता के नाम पर जातियों की ऊँच-नीच के औचित्य को सिद्ध करना चाहते हैं। सामाजिक और बौद्धिक चेतना के नाम पर एक ओर जाति सम्बन्धी असमानताओं की आलोचना की जाती है तो दूसरी ओर इन असमानताओं को दूर करने के लिए ईमानदारी से कोई संगठित प्रयत्न नहीं किये जा रहे हैं।

Scanned with CamScanner

की आधी से भी अधिक जनसंख्या दलितों, जनजातियों और पिछड़ी जातियों से सम्बन्धित है लेकिन आज भी उनके पास खेती योग्य भूमि का हिस्सा बहुत कम है। विभिन्न जाति संगठनों का राजनैतीकरण हो जाने के कारण योजनाबद्ध रूप से कुछ जाति समूहों को दूसरों से अलग रखने का प्रयत्न होने लगा है। स्पष्ट है कि कुछ समय पहले तक जाति सम्बन्धी जिन असमानताओं का सम्बन्ध जाति व्यवस्था के नियमों से था, वे असमानताएँ भ्रष्ट राजनीति के कारण एक नया रूप लेने लगी हैं।

भारत मे जातिगत असमानताओं की समस्या मण्डल आयोग के इस कथन से भी स्पष्ट होती है कि "भारत में ऊँची और नीची जातियों की असमानता हमारे दिमाग को प्रभावित करने वाली सबसे बड़ी ताकत है। लोगों की सामाजिक चेतना और व्यवहारों को प्रभावित करने में इसकी हमेशा से एक विशेष भूमिका रही है।" सन् 1988 में तमिलनाडु के बिशप ने भी यह माना है कि "धर्म परिवर्तन के बाद भी दलित जातियों से ईसाई बनने वाले लोग सामाजिक, शैक्षणिक और आर्थिक रूप से बहुत पिछड़े हुए हैं। यह पिछड़ापन जातिगत असमानताओं वाली परम्परागत व्यवस्था और व्यवहारों का ही परिणाम है।"

वास्तविकता यह है कि भारतीय समाज में जाति सम्बन्धी असमानताओं का इतिहास लगभग दो हजार वर्ष पुराना है। यह असमानताएँ विभिन्न स्मृतिकारों द्वारा सामाजिक व्यवस्था को एक विभेदकारी रूप देने के कारण पैदा हुईं। यहाँ जैन और बौद्ध धर्म के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने के लिए जातियों की ऊँच-नीच को इतना दृढ़ रूप दे दिया गया कि कोई भी व्यक्ति जाति सम्बन्धी नियमों का उल्लंघन न कर सके। **डॉ. एम. एन. श्रीनिवास** के अनुसार स्मृतियों द्वारा जाति सम्बन्धी जो नियम निर्धारित किये गये, उनमें 9 नियम मुख्य थे—1. विभिन्न जातियों के बीच ऊँच-नीच का एक निश्चित संस्तरण, 2. अन्तर्विवाह या अपनी ही जाति में विवाह करने का नियम, 3. सभी जातियों द्वारा अपने आनुवंशिक व्यवसाय को करने का नियम, 4. विभिन्न जातियों के बीच भोजन और हुक्का-पानी से सम्बन्धित प्रतिबन्ध, 5. विभिन्न जातियों की प्रथाओं और वेशभूषा में अन्तर, 6. सभी जातियों के साथ जुड़े हुए पवित्रता और अपवित्रता सम्बन्धी विश्वास, 7. जाति की प्रस्थिति के अनुसार व्यक्तियों के अधिकारों और निर्योग्यताओं का निर्धारण, 8. जाति संगठनों द्वारा व्यक्ति के व्यवहारों का नियमन तथा 9. विभिन्न जातियों के लिए एक-दूसरे से भिन्न दण्ड-व्यवस्था।

यदि जाति सम्बन्धी इन नियमों का विश्लेषण किया जाय तो स्पष्ट होता है कि यह सभी नियम इसलिए बनाये गये जिससे निम्न जातियों की तुलना में उनसे उच्च जातियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति ऊँची रहे तथा सभी जातियाँ एक-दूसरे से अलग रहें। सभी जातियों को मानसिक रूप से अपनी सामाजिक प्रस्थिति के बारे में सन्तुष्ट रखने के लिए धर्मशास्त्रों द्वारा पवित्रता और अपवित्रता की धारणा के बारे में बहुत-सी गाथाएँ प्रचारित की गयीं। वर्तमान युग में जाति व्यवस्था की संरचना और नियमों में अनेक परिवर्तन हो जाने के बाद भी किसी न किसी रूप में जाति व्यवस्था के असमानताकारी नियम आज भी प्रभावपूर्ण बने हुए है। इसी का परिणाम है कि अनेक प्रयत्नों के बाद भी जातिगत असमानताएँ हमारे समाज के विकास में गम्भीर बाधा पैदा कर रही हैं।

आज जैसे-जैसे निम्न जातियाँ अपने अधिकारों को पाने के लिए संगठित होती जा रही हैं, अन्तर्जातीय तनावों में भी वृद्धि होने लगी है। वर्तमान लोकतान्त्रिक व्यवस्था में अनेक राजनीतिक दल विभिन्न जातियों के संगठन इसलिए बनाने में रुचि लेते है जिससे वे इसका राजनीतिक लाभ प्राप्त कर सकें। चुनाव के समय अपने-अपने उम्मीदवारों का चयन करते समय भी इस बात का ध्यान रखा जाता है कि एक विशेष क्षेत्र मे किस जाति के मतदाताओं की संख्या कितनी अधिक है। स्वाभाविक है कि यह सभी दशाएँ जातियों की दूरी को बढ़ाकर अप्रत्यक्ष रूप से जातिगत विभेदों को कम करने में बाधा पैदा करती है।

जातिगत असमानताओं के कारण
(CAUSES OF CASTE INEQUALITIES)

भारतीय समाज में परिवर्तन और रूपान्तरण के बाद भी जनसाधारण का जीवन एक बड़ी सीमा तक तरह-तरह के धार्मिक विश्वासों और परम्पराओं से बँधा हुआ है। शिक्षित और आधुनिक मनोवृत्तियों वाले लोगों के विचार भी परम्पराओं के प्रभाव से पूरी तरह मुक्त नहीं हैं। जाति-असमानताओं को प्रोत्साहन देने वाली कुछ मुख्य दशाएँ अग्र प्रकार हैं :

Scanned with CamScanner

(1) मनुस्मृति के विधान (Rules of *Manusmrati*)—अधिकांश प्रमाणों से यह स्पष्ट होता है कि आज से लगभग 2200 वर्ष पहले मौर्य वंश का शासन समाप्त होने के बाद जब पहली बार भारत के एक बड़े हिस्से पर ब्राह्मण सम्राट पुष्यमित्र शुंग का शासन आरम्भ हुआ तो उनके नेतृत्व में अनेक स्मृतियों की रचनाओं को अलौकिक धर्मग्रन्थों का रूप देकर एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था स्थापित की गयी जिसके द्वारा सभी वर्गों और जातियों के लोग ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा और अलौकिक शक्ति को स्वीकार कर सकें। इन स्मृतियों में मनुस्मृति सबसे महत्वपूर्ण रचना है जिसे 'मानव धर्मशास्त्र' तथा 'सनातन हिन्दू धर्म' का रूप दिया गया। मनुस्मति और दूसरी स्मृतियों में एक ओर ब्राह्मणों के विशेषाधिकारों का विस्तार से उल्लेख किया गया, वहीं दूसरी ओर सम्पत्ति के संचय, सामाजिक प्रस्थिति, शिक्षा, विवाह, करों के भुगतान, न्याय और दण्ड जैसे सभी क्षेत्रों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णों से सम्बन्धित जातियों के बीच भारी विभेद कर दिये गये। मनुस्मृति में दिये गये कुछ विधान जातिगत असमानताओं को समझने के लिए काफी हैं।

ब्राह्मण जातियों के विशेषाधिकारों को स्थायी रूप देने के लिए कहा गया कि "जन्म लेते ही ब्राह्मण पृथ्वी पर सबसे श्रेष्ठ है क्योंकि ईश्वर ने सभी प्राणियों के लिए जिस धर्म की रचना की है, वह ब्राह्मण में ही समाहित है (1/99)।" "ब्राह्मण कहीं भी रखे हुए द्रव्य को देखकर उसे अपने अधिकार में ले सकता है क्योंकि वही पृथ्वी पर सब कुछ का स्वामी है (8/37)।" "अन्य वर्णों को अपराध के अनुसार प्राणदण्ड देना अथवा उनका कोई अंग काटना उचित है लेकिन शास्त्रों में ब्राह्मण का सिर मुड़वा देना ही उसे प्राण-दण्ड देने के समान है (8/379)।" ब्राह्मणों की तुलना में क्षत्रिय तथा वैश्य जातियों के बीच भी मनुस्मृति में स्पष्ट विभेद किया गया है। यह व्यवस्था की गयी कि "ऋण देने वाले व्यक्ति को चाहिए कि वह ब्राह्मण से सौ पण पर दो पण, क्षत्रिय से तीन पण, वैश्य से चार पण तथा शूद्र से पाँच पण की दर से मासिक ब्याज प्राप्त करे (8/142)।" "ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य, यह तीनों वर्ण वेदों को पढ़ सकते हैं लेकिन क्षत्रिय तथा वैश्य केवल ब्राह्मण के माध्यम से ही वेदों को पढ़ें (10/1)।" "ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य पर चोरी का गलत आरोप लगाने वाले व्यक्ति को मिलने वाला आर्थिक दण्ड अलग-अलग होना चाहिए। यदि मिथ्या आरोप लगाने वाला व्यक्ति शूद्र हो तो वह वध करने योग्य है (8/267)।" मनुस्मृति के अध्याय 10 में अस्पृश्य जातियों के निवास, वेशभूषा, आजीविका, खान-पान तथा सामाजिक प्रस्थिति का विस्तार से उल्लेख करके उन्हें सभी तरह के अधिकारों से वंचित कर दिया गया। अध्याय 8 में उनके लिए एक अलग न्याय व्यवस्था निर्धारित की गयी। भारत में एक लम्बे समय तक राजनीतिक अस्थिरता और छोटे-छोटे राजाओं के बीच चलने वाले संघर्षों के कारण पुरोहितों की शक्ति इतनी बढ़ गयी कि मनुस्मृति के विधानों के अनुसार काम करना ही राजाओं लिए आवश्यक हो गया। इसी के फलस्वरूप धीरे-धीरे हमारे समाज में जातिगत असमानताएँ तेजी से बढ़ने लगीं।

(2) धार्मिक शिक्षा एवं परम्परावादी जीवन (Religious Education and Traditional Life)—भारत में जाति असमानताओं को बढ़ाने का एक अन्य कारण यहाँ एक लम्बे समय तक धर्म पर आधारित अनौपचारिक शिक्षा और परम्परावादी जीवन रहा है। धार्मिक रूप से यहाँ शिक्षा कुछ राजपरिवारों और संभ्रान्त वर्ग तक ही सीमित रही। यह शिक्षा भी पूरी तरह जाति के नियमों पर आधारित थी। इसके फलस्वरूप अपने आरम्भिक जीवन से ही व्यक्ति जातियों की पारस्परिक दूरी और जाति पर आधारित पवित्रता और अपवित्रता सम्बन्धी मनोवृत्तियाँ विकसित करने लगे। शूद्र जातियाँ किसी भी तरह की शिक्षा से वंचित रहने के कारण सामाजिक भेदभाव पर आधारित नीतियों का विरोध नहीं कर सकीं। इस प्रकार यहाँ एक ऐसी परम्परावादी सामाजिक व्यवस्था विकसित हो गयी जिसमें जातिगत असमानताओं को व्यवहार के सामान्य ढंग के रूप में देखा जाने लगा।

(3) जाति पंचायतें (Caste *Panchayats*)—ग्रामीण और नगरीय सभी क्षेत्रों में जाति पंचायतों को मिलने वाले अधिकारों से भी जाति असमानताओं में वृद्धि हुई। नगर में सभी छोटी-बड़ी जातियों की अपनी अलग-अलग पंचायतें थीं जबकि गाँव में उच्च जातियों के वयोवृद्ध लोग ही पंचों के रूप में गाँव के लोगों के व्यवहारों को नियन्त्रित करते थे। इन पंचों की शक्ति इतनी अधिक थी कि इन्हें 'पंचपरमेश्वर' के रूप में देखा जाने लगा। जाति पंचायतों का मुख्य काम जाति व्यवस्था के नियमों को प्रभावपूर्ण बनाना और इनका उल्लंघन करने वाले लोगों को कठोर दण्ड देना था।

Scanned with CamScanner

ऐसा दण्ड जाति-निष्कासन, हुक्का-पानी बन्द, ब्राह्मण भोज, जाति भोज, तीर्थ यात्रा या प्रायश्चित आदि के रूप में दिया जाने लगा। इसी व्यवस्था के कारण भारत में जातिगत असमानताओं ने एक संस्थात्मक रूप ग्रहण कर लिया।

(4) **ग्रामीण अर्थव्यवस्था** (Rural Economy)—भारत सदैव से ग्रामीण अर्थव्यवस्था वाला समाज रहा है। गाँव के पुजारी और गाँव पंचायत के पंचों द्वारा ग्रामीणों को जिन व्यवहारों का निर्देश दिया गया, उन्हें हमेशा उसी रूप में स्वीकार किया जाता रहा। भारी निर्धनता और अशिक्षा अपने आप व्यक्ति को अन्धविश्वासी और असहाय बना देती है। इन दशाओं में गाँव में उच्च जातियों के लोग जाति सम्बन्धी असमानताओं को बढ़ाकर अपने स्वार्थों को पूरा करने में लगे रहे जबकि धर्म के नाम पर निम्न जातियों के लोग इन असमानताओं को अपने भाग्य का परिणाम मानते रहे।

(5) **अन्तर्विवाह का प्रचलन** (Rule of Endogamy)—जाति व्यवस्था के नियमों के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति का विवाह अपनी ही उपजाति के अन्दर करना अनिवार्य रहा है। इस नियम के उल्लंघन को बहुत गम्भीर सामाजिक अपराध के रूप में मानकर इसके लिए कठोर सामाजिक दण्ड की व्यवस्था की गयी। घुरिये ने लिखा है कि अन्तर्विवाह के नियम के कारण सभी छोटी-बड़ी जातियाँ आत्म-केन्द्रित समुदायों के रूप में बदल गयीं तथा उनके सामने जाति के नियमों के अनुसार व्यवहार करना ही सबसे बड़ा धार्मिक कर्तव्य समझा जाने लगा।

(6) **जाति पर आधारित राजनीति** (Caste-based Politics)—भारत में स्वतन्त्रता के बाद जब यहाँ लोकतान्त्रिक व्यवस्था स्थापित हुई तो धीरे-धीरे विभिन्न राजनीतिक दल जाति के आधार पर लोगों का अधिक से अधिक समर्थन पाने का प्रयत्न करने लगे। सिद्धान्तहीन राजनीति राष्ट्रीय और सामाजिक हितों को उतना महत्व नहीं देती जितनी कि सत्ता की जोड़-तोड़ को। इसके फलस्वरूप विभिन्न क्षेत्रों के अनेक राजनीतिक दलों ने जातिगत समानताओं और एकीकरण को प्रोत्साहन देने की जगह विभिन्न जातियों को एक-दूसरे के विरुद्ध संगठित करना शुरू कर दिया। जब जातीय समर्थन के आधार पर चुनावों में जीत-हार होने लगी तो सत्ता पक्ष के निर्वाचित प्रतिनिधि प्रत्येक दशा में अपनी जाति के लोगों को लाभ पहुँचाने की मुहिम में जुट गये।

(7) **जातियों का असमान विकास** (Uneven Development of Castes)—हमारे समाज में जाति सम्बन्धी असमानताओं का एक अन्य कारण विभिन्न जातियों को विकास के समान अवसर प्राप्त न हो पाना है। कुछ जातियों को शिक्षा, नौकरियों और व्यवसाय के अधिक अवसर मिले जबकि दलित और पिछड़ी जातियों में भी बहुत-सी जातियाँ विकास के अधिक अवसर प्राप्त नहीं कर सकीं। आरक्षण से मिलने वाले लाभों के कारण अनुसूचित जातियों ने भी अपनी स्थिति में सुधार लाने के अधिक प्रयत्न नहीं किये। दूसरी ओर ऊँची जातियों के लोगों में आरक्षण के प्रति असन्तोष बढ़ने लगा। इससे विभिन्न जातियों के बीच विरोध की भावना पैदा हुई तथा सभी जाति-समूह अधिक अधिकारों की माँग को लेकर संगठित होने लगे।

(8) **गुट निर्माण की प्रवृत्ति** (Tendency of Faction Formation)—आन्द्रे बितेई ने अपने अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट किया कि भारत के ग्रामीण जीवन में गुट-निर्माण की दशा ने ही जातिगत असमानताओं को बढ़ाया है। आज गाँवों में एक विशेष जाति की प्रस्थिति और अधिकारों का निर्धारण इस बात से होता है कि उस जाति का गुट दूसरे गुटों की तुलना में कितना अधिक या कम प्रभावशाली है। इसे आन्द्रे बितेई ने एक 'असंगत सामाजिक व्यवस्था' (Disharmonic Social System) का नाम दिया। यह असंगत सामाजिक व्यवस्था गुटों के निर्माण को प्रोत्साहन देकर जाति सम्बन्धी असमानताओं में वृद्धि करती है।

जातिगत असमानताओं से उत्पन्न समस्याएँ
(PROBLEMS EMERGING DUE TO CASTE INEQUALITIES)

भारत में जातिगत विभेदों का सबसे अमानवीय रूप **अस्पृश्यता की समस्या** के रूप में सामने आया। देश की आधी से भी अधिक आबादी को शिक्षा के अधिकार न मिल पाने के कारण समाज चेतना-शून्य बन गया। राज दरबारों में ऊँची जातियों के लोगों का ही बोलवाला रहने के कारण गाँवों के अभावपूर्ण जीवन की ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया। जैसे-जैसे पुरोहित वर्ग की ताकत

Scanned with CamScanner

बढ़ती गयी, भारतीय समाज में तरह-तरह के अन्धविश्वासों, कर्मकाण्डों और कुप्रथाओं में वृद्धि होने लगी। जातिगत असमानताओं ने अनन्त शताब्दियों तक के लिए भारतीय समाज को हजारों टुकड़ों में इस तरह बाँट दिया कि आज सामाजिक और राष्ट्रीय एकीकरण हमारे लिए सबसे बड़ी चुनौती बन गयी है।

(1) **निम्न जातियों का शोषण** (Exploitation of Lower Castes)—भारत की जनसंख्या में दलित जातियों और पिछड़ी जातियों की संख्या आधे से भी अधिक है। जाति सम्बन्धी नियमों के कारण दलित जातियों का इतना अमानवीय शोषण हुआ जिसका उदाहरण संसार के किसी भी दूसरे देश में देखने को नहीं मिलता। यूरोप में गुलामों का भी उतना शोषण नहीं हुआ जितना भारत में अस्पृश्य कही जाने वाली जातियों का हुआ। पिछड़ी जातियों के लिए भी केवल उन्हीं व्यवसायों के द्वारा आजीविका उपार्जित करने की अनुमति दी गयी जो उच्च जातियों की सेवा से सम्बन्धित थे। इस शोषण को सामाजिक और धार्मिक स्वीकृति मिली होने से इसने एक स्थायी व्यवस्था का रूप ले लिया।

(2) **सामाजिक निष्क्रियता** (Social Passivism)—प्रोफेसर डिसूजा ने अपने एक लेख में लिखा है कि सामाजिक निष्क्रियता एक ऐसी दशा है जिसमें व्यक्ति अपनी ही सामाजिक व्यवस्था से अपने आपको अलग-थलग महसूस करता है तथा सामाजिक सहभाग में रुचि लेना बन्द कर देता है। वास्तव में हम आज सामाजिक निष्क्रियता की एक गम्भीर समस्या का शिकार हैं जो जातिगत असमानताओं का ही परिणाम है। भारत में स्वतन्त्रता के बाद निम्न जातियों को नौकरियों, व्यवसाय, उद्योग और शिक्षा की विशेष सुविधाएँ दी गयीं। इसके बाद भी लाभपूर्ण आर्थिक क्रियाओं और व्यवसायों में इन जातियों का सहभाग बहुत कम है। तमाम छात्रवृत्तियों के बाद भी दलित जातियों के लोग अपने बच्चों को समुचित शिक्षा देने में रुचि नहीं ले रहे हैं। सामाजिक निष्क्रियता के कारण उनकी मानसिकता आज भी पृथक्करण की है।

(3) **व्यापक निरक्षरता** (Wide Spread Illiteracy)—जातिगत नियमों के अनुसार केवल निम्न जातियाँ ही शिक्षा के अधिकार से वंचित नहीं थीं बल्कि व्यावहारिक रूप से क्षत्रिय और वैश्य जातियाँ भी शिक्षा की सुविधा से वंचित रहीं। इसका अनुमान इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि स्वतन्त्रता के समय भारत में केवल 18 प्रतिशत लोग साक्षर थे। साक्षरता का तात्पर्य केवल मामूली अक्षर ज्ञान से है, शिक्षा से नहीं। लगभग 60 वर्षों के प्रयत्नों के बाद भी भारत में साक्षरता का प्रतिशत आज भी 65 प्रतिशत से अधिक नहीं है। शिक्षा की कमी के कारण भी लोग अपने अधिकारों के प्रति जागरूक नहीं हो सके।

(4) **जातिवाद** (Casteism)—जातिगत असमानताओं ने विभिन्न जातियों के बीच पारस्परिक दूरी और विरोध को प्रोत्साहन देकर समाज में जातिवाद की एक नयी समस्या पैदा कर दी। जातिवाद अपनी जाति के प्रति वह निष्ठा है जो सामाजिक न्याय, कुशलता और समानता के मानदण्डों की उपेक्षा करके व्यक्ति को प्रत्येक दशा में अपनी ही जाति के लोगों का पक्ष लेने की प्रेरणा देती है। यदि हमारी सामाजिक संरचना जातिगत असमानताओं पर आधारित न होती तो हमारी लोकतान्त्रिक व्यवस्था कहीं अधिक सफल हो सकती थी।

(5) **अन्तर्जातीय तनाव** (Inter-caste Tensions)—एक ओर उच्च जातियाँ अपनी परम्परागत श्रेष्ठता को बनाये रखने के लिए निम्न जातियों को ऊपर उठते हुए देखना नहीं चाहतीं तो दूसरी ओर निम्न जातियाँ अपनी स्थिति को ऊँचा उठाने के लिए ऊँची जातियों का हर तरह से विरोध करने के लिए संगठित होने लगी हैं। ऐसा विरोध कभी-कभी हिंसक संघर्ष के रूप में बदल जाता है। जिन क्षेत्रों में निम्न जातियों के लोगों की संख्या-शक्ति अधिक है, वहाँ अन्तर्जातीय संघर्षों का रूप अधिक उग्र हो जाता है। जाति संघर्ष का दूसरा रूप उच्च जातियों के बीच बढ़ने वाले संघर्ष के रूप में भी देखने को मिलता है। बिहार में ब्राह्मण और ठाकुर जातियों के बीच चलने वाले संघर्षों ने आज एक गम्भीर समस्या का रूप ले लिया है।

(6) **सामाजिक पृथक्करण में वृद्धि** (Increase in Social Separatism)—भारत में आज संविधान के द्वारा जाति, धर्म और वंश से सम्बन्धित सभी असमानताओं को समाप्त कर दिया गया है लेकिन हजारों वर्षों से चली आ रही जाति सम्बन्धी असमानताएँ लोगों की मानसिकता को पूरी

Scanned with CamScanner

तरह नहीं बदल सकी हैं। यदि कोई व्यक्ति जातियों की समानता की बात करता है तो उसे अक्सर धर्म विरोधी माना जाने लगता है। स्वयं अपनी ही जाति के लोग उसे सन्देह की निगाह से देखना आरम्भ कर देते हैं। यह दशा हमारे राष्ट्रीय एकीकरण में एक बड़ी बाधा है।

स्पष्ट है कि जाति सम्बन्धी असमानता परम्परागत भारतीय संरचना से उत्पन्न होने वाली समस्या है। इसी कारण इस समस्या को हम एक संरचनात्मक समस्या कहते हैं। भारतीय सामाजिक संरचना से सम्बन्धित संस्थाओं, व्यवहार के नियमों और सामाजिक मानदण्डों में परिवर्तन लाकर ही इस समस्या का समाधान किया जा सकता है।

Scanned with CamScanner